आपने लिखा

आपकी प्रतिष्ठित पत्रिका 'संदर्भ' का अंक 72 प्राप्त हुआ। आभारी हूँ। मैं 'संदर्भ' का नियमित पाठक हूँ क्योंकि इस पत्रिका से मुझे चिन्तनपरक और संग्रहणीय साहित्य मिलता रहता है। इतनी अच्छी पत्रिका प्रकाशित करने के लिए बधाई स्वीकार करें।

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
इलाहाबाद, उ.प्र.

मैंने और मेरे एक मित्र जावेद ने संदर्भ के अंक 72 में प्रकाशित जितेन्द्र कुमार का लेख 'प्राथमिक कक्षाएँ एवं संवाद' पढ़ा और बतियाने लगे। इस बातचीत में बड़ा रस आया। असल में, लेख में जिस जगह का ज़िक्र किया गया है, उस जगह हम दोनों का बचपन भी बीता है इसलिए बच्चों की भाषा काफी करीबी लग रही थी। पर एक जगह तो हमारी हँसी छूट गई क्योंकि जब बच्चे ने कहा कि "हमारी गैया कूद गई," तो लेखक ने पूछा, "कहाँ से।" दरअसल, जब किसी गाय का बछड़ा मर जाता है या मरा पैदा होता है तो वह दूध देना बन्द कर देती है और कई बार दूध लगाने जाओ तो वह इधर-उधर कूदने लगती है। इसे ही 'गैया का कूदना' कहते हैं।

प्रमोद मैथिल
भोपाल, म.प्र.

संदर्भ का नया अंक बहुत अच्छा है। इस अंक में प्रकाशित लेख 'शिक्षा को दिलचस्प बनाने का एक जतन' कई दृष्टियों से अच्छा लगा। अपनी भाषा में पढ़ना सीखने की सहजता इस अनुभव में दृष्टव्य है। कोंकणा बोली, फिर गुजराती, फिर अँग्रेज़ी। बच्चे सीखते ही इसी तरह हैं। भाषा भी, कहानी भी, विज्ञान भी और पूरी दुनिया को। रूसी-पूसी से अँग्रेज़ी रटाने वाले भी कुछ सबक ले सकते हैं।

एनसीईआरटी ने 'समझ का माध्यम' पर कुछ शुरुआत की है। अच्छा हो ऐसे विविध अनुभवों को संकलित करके सभी भाषाओं में वितरित किया जाए। बरसात को नापना और जंगल में फूल-पत्तियों का अध्ययन भी बहुत मौलिक दृष्टि देता है। लेखक ने गांधी की तालीम से शुरू करके अन्त तक उसे बहुत रोचक ढंग से उदाहरण सहित प्रस्तुत किया है। बधाई।

प्रेमपाल शर्मा
नई दिल्ली

मुझे संदर्भ पत्रिका पढ़ने का सौभाग्य इलाहाबाद की एक पुस्तक-प्रदर्शनी में मिला। पत्रिका की शैली, शब्द रचना, अक्षर संयोजन एवं संकलित लेख उत्कृष्ट एवं ज्ञानवर्धक हैं। आशा है, ऐसे ही उत्कृष्ट लेख आगे भी पढ़ने को मिलते रहेंगे।

एस.के. तिवारी
इलाहाबाद, उ.प्र.

मैं पिछले दो वर्षों से 'संदर्भ' पढ़ रहा हूँ। 'संदर्भ' में प्रकाशित लेख यूँ तो हमेशा ही सारगर्भित और रोचक होते हैं परन्तु अंक 73 मेरे लिए बहुत उपयोगी और आत्मसन्तुष्टि देने वाला था। दरअसल, मैं पिछले कई दिनों से लघुत्तम और महत्तम समापवर्तक को समझने के लिए जद्दोजेहद कर रहा था परन्तु यह अंक जैसे ही मेरे हाथ लगा मुझे बहुत खुशी हुई, क्योंकि इसमें प्रकाशित लेख 'एरिया मॉडल से लघुत्तम-महत्तम समापवर्तक समझना' में मेरी समस्या का समाधान जो था।

इसके अलावा डेनियल ग्रीनबर्ग का लेख 'देर-सबेर बच्चे पढ़ना सीख ही जाते हैं' तथा प्राथमिक कक्षाओं से जुड़ी रचनाएँ जैसे 'खेल-खेल में भाषा शिक्षण', 'शिक्षा को दिलचस्प बनाने का एक जतन' और 'मिड-डे-मील' काफी रोचक लगीं।

महेश झरबड़े
भोपाल, म.प्र.

मैंने संदर्भ में प्रकाशित विश्व विजया सिंह जी का लेख 'खेल-खेल में भाषा शिक्षण' पढ़ा। यह जानकर अच्छा लगा कि बच्चों को भाषा सिखाने के लिए यदि खेल गतिविधियों को काम में लिया जाए तो उनके सीखने में मदद मिलेगी तथा उम्र-भर उस सीखे हुए को वे भूल नहीं पाएँगे। संज्ञा, विलोम शब्द, पर्यायवाची शब्द व कहानी बनाना सिखाने के उदाहरण लेकर उपरोक्त बात कही गई है। यदि उनका अनुभव ऐसा रहा है तो मैं यह कहूँगा कि ऐसे कार्य शिक्षकों के साथ लगातार किए जाने चाहिए ताकि उन्हें अकादमिक मदद मिले और स्कूलों की शैक्षिक स्थिति को बेहतर करने में भी कुछ योगदान हो।

पढ़ने के बाद कुछ सवाल भी मन में उठे और वो सवाल भाषा सीखने से सम्बन्धित ही हैं कि क्या बच्चे को कुछ शब्दों के विलोम, पर्यायवाची या संज्ञा शब्द सिखा देना, भाषा शिक्षण का उद्देश्य पूरा कर देता है या उस अवधारणा की समझ बनाना ज़रूरी है?

मुझे लगता है कि बच्चे को चार विलोम शब्द या पाँच पर्यायवाची शब्दों का पता चल जाएगा तो उससे उसका काम चलने वाला नहीं है। उसको जब तक यह नहीं सिखाएँगे कि विलोम शब्द होते क्या हैं, भाषा सीखने में इनकी उपयोगिता क्या है तब तक यह सिखाना उसके लिए शायद सार्थक नहीं होगा।

मैंने भाषा सीखने के सन्दर्भ में जो पढ़ा व समझा है वह तो यह है कि भाषा सन्दर्भ से ही सीखी जाती है तथा बिना सन्दर्भ के भाषा सीखना मुश्किल होता है। उदाहरण के तौर पर देखें तो 'सोना' शब्द का अर्थ जब तक सन्दर्भ के साथ नहीं जोड़ेंगे तब तक इन्सान उसका अर्थ नहीं सीख सकता, जैसे - मैं बहुत थक गया हूँ मुझे 'सोना' है। या मेरी बेटी की शादी में 'सोना' खरीदना है। या इस लड़की का नाम 'सोना' है आदि। यदि विलोम, पर्यायवाची या संज्ञा शब्दों को सिखाने में ऐसे सन्दर्भों का काम लिया जाए तो भाषा सीखने के साथ-साथ अवधारणा के बारे में भी समझ बेहतर बनती जाएगी।

एक बात और भी है कि हम यहाँ बच्चे की भाषा में कौन-सी क्षमता विकसित करना चाह रहे हैं। क्योंकि यदि भाषाई क्षमताओं के आधार पर हम भाषा को सिखाने की बात करेंगे तो संज्ञा से लेकर कहानी व कविता बनाने का काम आसान हो जाएगा। मुझे लगता है कि उसके दैनिक जीवन में काम आने वाले शब्दों के उदाहरण लेकर बात की जा सकती है, जैसे मटके का चित्र दिखाकर बच्चों से पूछा जाए कि ये क्या है। इसे देखकर बच्चे एक से अधिक नाम बता देंगे। यदि बच्चे कहीं अटकते हैं तो शिक्षक उनको नाम याद दिलाने में मदद कर दें। प्रक्रिया पूरी होने के बाद बता सकते हैं कि जितने भी नाम आपने बताए वो सारे मटके या गगरे के पर्यायवाची हैं। अब हो सकता है कि किसी क्षेत्र में मटके को 'पाता' बोलते हों तो वहाँ पर मटका 'पाता' का पर्यायवाची हो जाएगा। इस काम को अलग से करने की बजाय पाठ पढ़ने के दौरान ही किया जाए तो बच्चे

सन्दर्भ के साथ इन शब्दों को भी जोड़ते हुए आगे बढ़ जाएँगे।

राजस्थान में प्राथमिक स्तर के बच्चों की भाषाई क्षमता के अनुभवों के आधार पर देखें तो पाठ्यक्रम जिन अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए कहता है वो क्षमताएं बहुत ही कम स्कूलों में पूरी होती मिलती हैं। ऐसे हालात में हम भाषा सिखाने के लिए कौन-से तरीके काम में लें, यह ज़्यादा महत्वपूर्ण सवाल है। शिक्षक प्रशिक्षणों में या स्कूल अवलोकन में जब इस बारे में शिक्षकों से संवाद करते हैं तो उनका कहना होता है कि कक्षा-8 तक पहुँच कर भी बच्चे ठीक से पढ़ना नहीं जानते। यदि शिक्षकों की बात सही है और हमारा अवलोकन भी यही कहता है कि बच्चे पढ़ने में सहज नहीं हैं तो बच्चों को पहले पढ़ने में सहज करने का काम किया जाना चाहिए। कृपया भाषा पर काम करने वाले लोग इस बात पर अपनी राय रखें कि बच्चा पहले भाषा सीखता है या व्याकरण या दोनों साथ-साथ ही सीखता है? क्या कोई ऐसा उदाहरण है जिसके लिए हम कह पाएँ कि भाषा के बिना व्याकरण सिखा रहे हैं? बच्चे की आरम्भिक क्षमताओं की बात करें तो वह बोलने व सुनने में भाषा व व्याकरण, दोनों काम ले रहा होता है तो फिर हम उसे अलग-अलग करके सीखने की बात क्यों करते हैं? मुझे लगता है जिस तरह से पढ़ने में समझना निहित है उसी तरह भाषा में व्याकरण ज्ञान भी निहित ही होता है।

अतः भाषा सीखने व सिखाने में सामग्री का उपयोग, खेल या सहायक गतिविधि मदद तो कर सकती हैं परन्तु भाषा की अवधारणात्मक समझ शायद विकसित नहीं हो सकेगी। भाषा सिखाने में सहायक गतिविधियों के बारे में दावा करने की बजाय भाषा की प्रकृति व उसके तरीकों की बात करनी चाहिए कि इन्सान भाषा कैसे सीखता है। बाकी चीज़ों को सहायक या उसे समृद्ध बनाने के रूप में देखना चाहिए।

इस लेख को पढ़ने के बाद मुझे कम से कम यह प्रेरणा मिली कि मैं अपने अनुभवों को आपके साथ साझा करने का साहस जुटा पाया हूँ। इस तरह के अनुभव आप आगे भी हम जैसे पाठकों तक पहुँचाते रहेंगे इसकी अपेक्षा रहेगी। मैं यह भी बताना चाहूँगा कि मैं नियमित रूप से 'संदर्भ' को नहीं पढ़ता, कभी-कभार देखने का अवसर मिलता है लेकिन इस अनुभव ने अपनी बात कहने की प्रेरणा दी।

ओमपाल सिंह दुमोलिया
बाराँ, राजस्थान

संदर्भ का 73वाँ अंक कल ही मिला। मेरी एक साथी ने इसे तुरन्त मुझसे हथिया लिया और वह उसे पन्ने दर पन्ने देखने लगी। वह काफी उत्सुकता से लेखों के शीर्षक देख रही थी। ऑफिस का समय पूरा होने के बाद मुझे पत्रिका थमाकर वह चली गई। बाद में मैं पत्रिका के पन्नों को पीछे की तरफ से पलटने लगा। वैसे मैं पत्रिका को पीछे से इसलिए पलटता हूँ क्योंकि इसमें सबसे पीछे की ओर एक छोटा-सा मगर मेरी पसन्द का कोई-न-कोई लेख मिल जाता है। इस तरह से उल्टा चलते हुए जब अंक के सबसे पहले लेख पर आया तो मैं रुक गया और पढ़ने लगा।

'देर सबेर बच्चे पढ़ना सीख ही जाते हैं' लेख को पढ़कर मैं सामान्य बच्चों में व्याप्त पढ़ने की समस्या के बारे में सोचने लगा। बच्चों को किस उम्र में पढ़ना सीख

जाना चाहिए यह कोई तय तो नहीं है ना! ये मापदंड तो बड़ों ने ही बच्चों के लिए बनाए हैं। मैंने पाया है कि कई बच्चे तीन साल की उम्र में ही लिखे हुए से जूझने का प्रयास शुरू कर देते हैं। मेरा बेटा भी जब कोई साढ़े तीन-चार साल का था, तो वह अक्सर अखबार पढ़ती हुई अपनी माँ के इर्द-गिर्द मंडराता रहता था। माँ कोई शिक्षिका तो नहीं थी और उसका मकसद अपने बच्चे को पढ़ना सिखाना भी नहीं था। मगर वह माँ को ध्यान से देखता रहता था। कुछ ही दिन में वो अपनी माँ के पढ़ने के तरीके की नकल करने लगा!

एक बात और, हम उज्जैन में जिस घर में रहते थे उस कैम्पस में दो किराएदार रहते थे। उनमें से एक मैं था। हमारे लिए 'नईदुनिया' आता था और हमारे पड़ोसी किराएदार के यहाँ 'दैनिक भास्कर'। मगर हमारा बेटा अपने घर पर आने वाले 'नईदुनिया' को पहचान लेता था और अपने अखबार को उठा लेता था। बहरहाल, तब मैंने इतना ध्यान नहीं दिया कि आखिर एक नन्हाँ-सा बच्चा अपने अखबार को कैसे पहचान पा रहा है।

हो सकता है कि उस अखबार का चित्र उसके दिमाग में बन गया हो। वैसे कोई और वजह नहीं हो सकती क्योंकि दोनों अखबारों की साईज़ में भी कोई फर्क नहीं था।

अब मुझे लगता है कि बच्चे ऐसी कई सारी चीज़ों को बखूबी पहचान लेते हैं। एक और बात मेरी बेटी के बारे में, जब मैं अपनी बच्ची को गोदी में लेकर बाहर घूमने निकलता और वह चॉकलेट की माँग करती और मैं उसको दुकान वाले रास्ते की बजाय दूसरे रास्ते की ओर लेकर जाते हुए यह कहता, "चलो दुकान चलते हैं" तो वह गोदी में मचलते हुए विरोध करती और कहती कि "दुकान तो उस तरफ है।"

मैं अब भी नहीं जानता कि बच्चे पढ़ना सीखते कैसे हैं। मैंने यह भी देखा है कि कई सारे बच्चे कक्षा सातवीं तक आते-आते भी नहीं पढ़ पाते हैं। मेरे हिसाब से इसकी एक वजह यह है कि दरअसल उनमें पढ़ने का आत्मविश्वास ही पैदा नहीं होने दिया जाता। हाल ही में हम धरमपुर में ऐसे बच्चों की पहचान कर पता करने की कोशिश कर रहे हैं कि वे आखिर पढ़ क्यों नहीं पाते? अब तक ठोस कारण तो समझ में नहीं आए, मगर संकेत के रूप में हमें कुछ मुद्दे समझ आ रहे हैं। जैसे कि बच्चे को किसी बड़े ने न पढ़ पाने के विषय में धमकाया हो या कोई अप्रिय बात कही हो, बच्चों को छुटपन से ही प्रिंट सामग्री के दर्शन न हुए हों आदि।

हमने ऐसे बच्चों की पहचान कर उनके साथ बातचीत करना प्रारम्भ किया। बातचीत में हमने इस बात का खासा ध्यान रखा कि कहीं से भी बच्चे को इस बात का अहसास नहीं होना चाहिए कि उसे पढ़ना नहीं आता। ऐसे बच्चों के साथ कुछ खेल खेले जाते। और साथ-ही उन्हें चित्रों वाली किताबें दी जाने लगीं।

हमने देखा कि बच्चे को जब यह अहसास हो कि उसका भी कोई वजूद है इस दुनिया में तो उसका हौसला एकदम बढ़ जाता है। हाँ, ऐसे बच्चे कई मायनों में उन बच्चों से कहीं भी पीछे नहीं रहते जो पढ़ना जानते हैं।

ये कुछ बिखरे-बिखरे से उदाहरण हैं। मैं जब इस लेख को पढ़ रहा था और जो बातें मेरे ज़ेहन में आई, वे यहाँ लिख दी हैं। हो सकता है कि मैं जब इस लेख को

दोबारा पढ़ूँ तो कुछ बातें मेरे दिमाग में आएँ। मगर इतना कह सकता हूँ कि इस लेख ने मुझे कोई अठारह-उन्नीस साल पीछे जाकर बच्चों के बारे में सोचने को प्रेरित किया।

बहरहाल, चलते-चलते सन्दर्भ पत्रिका के बारे में एक-दो बातें और। संदर्भ वाकई में 'संदर्भ' है। शिक्षा में काम करते हुए पुराने अंकों का इस्तेमाल मैंने और मेरे साथियों ने भरपूर किया है। इसलिए कई दफे ऐसा भी होता रहा कि मैं संदर्भ के ताज़े-ताज़े अंक को नहीं पढ़ पाया हूँ मगर जब किसी खास मसले पर सोचने, करने की बारी आती है तो यह एक विश्वसनीय और आधारभूत सामग्री के रूप में हमारे साथ खड़ी होती है। पिछले साल जब हम विज्ञान शिक्षण में ऊर्जा और रक्त परिसंचरण तंत्र को लेकर प्रशिक्षण की रूपरेखा और पठन सामग्री तैयार कर रहे थे तब संदर्भ से हमने काफी सामग्री उपयोग की।

के.आर. शर्मा
धरमपुर, गुजरात

भूल-सुधार

संदर्भ के अंक 73 में प्रकाशित कैरन हैडॉक के लेख 'डार्विन न होता तो क्या होता' में पृष्ठ 34 के दूसरे पैराग्राफ की आठवीं पंक्ति में भूलवश 'बारहा' के स्थान पर 'बारह' लिख दिया गया था।

पिछले अंक की विषय-सूची में 'एरिया मॉडल से लघुत्तम-महत्तम समापवर्तक समझना' लेख के लेखक का नाम भूलवश 'एस. श्रीनिवासन' लिख दिया गया है, जबकि यह लेख 'संकलित' है, जो भेजा ज़रूर एस. श्रीनिवासन ने हमारे पास।

-सम्पादक मण्डल